

## लेखक की ओर से

इस सारे जीव-जगत में सिर्फ मनुष्य का जीवन ही बुद्धि और विवेक से संपन्न है। वह अपने आप में संपूर्ण, उत्कृष्ट गुणों से परिपूर्ण है। आत्महत्या उस जीवन का अपमान है। उसकी क्षमताओं पर अविश्वास जताने जैसा है। वह उस जीवन के साथ भी खिलवाड़ है, जिसे न तो उसने दिया है और न ही उसे देने में सक्षम है। उस जीवन पर अपना अधिकार समझ बैठना और उसे नष्ट करने को अपना मौलिक अधिकार मानना, एक आत्मघाती सोच को आगे बढ़ाने जैसा है। यह उस दुष्कर्म को मौन सहमति देने जैसा है। किंतु कठिनाइयों से घिरा आदमी, निराशा में डूबा आदमी ऐसी संकट की घड़ी में अपना विवेक खो बैठता है। उससे बाहर निकलने के लिये वह आत्महत्या जैसे एक सरल उपाय को चुन लेता है। यह सोचकर कि वह इस बहाने बड़ी आसानी से इस संसार से बच निकलने में सफल हो जायेगा। सारे दुख-दर्द, कठिनाइयों के दौर से हमेशा-हमेशा के लिये बाहर निकल जायेगा। चिर निद्रा में सो जायेगा। कहीं शून्य बनकर शून्य में खो जायेगा। परंतु क्या यह संभव है उस व्यक्ति के लिये जो सब कुछ खोने के क्रम में लगा है। आत्महत्या करके वह उन सारी शक्तियों व क्षमताओं से वंचित होने वाला है। तो क्या वह इसके बगैर स्वयं को इस संसार से अलिप्त रखने में सफल हो सकता है? अगर यह काया पूरी तरह से पदार्थ न हो, थोड़ी बहुत अजर-अमर, नित्य, शाश्वत अपदार्थ का अंश हो तो निश्चित रूप से उसे अपनी चेतना के स्तर पर फिर से



उसी संसार का सामना करना पड़ सकता है किंतु सक्षम की जगह असक्षम बनकर, अपाहिज, मूक दर्शक बनकर।

अगर यह जीवन प्रथम नहीं है तो अंतिम भी नहीं होगा। उसके परिणामों का उसके भविष्य में विस्तार जरूर होगा। एक अन्वेषक की भावना रखकर मैंने इस किताब में कुछ जीवन सत्व खोजने की कोशिश की है। सिर्फ उस व्यक्ति के लिये जो इस जीवन से बचने के लिये आत्महत्या करना चाहता है। वैसे तो यह संक्षिप्त उपन्यास इस समस्या का हल नहीं है, पर इस ओर बढ़ाया हुआ पहला कदम जरूर हो सकता है। इसे इसके प्रथम उपचार के रूप में ही लेना चाहिये न कि एक प्रकार के अंधविश्वास को बढ़ाने के माध्यम के रूप में। इसका ध्येय इस रूग्ण मानसिकता से बाहर निकालना है और आत्महत्या के नकारात्मक पहलू को उजागर करना है।

इस आधुनिक युग में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक बड़ी गंभीर समस्या बनकर उभरी है। बीमारियों के बाद सबसे ज्यादा लोग आत्महत्या द्वारा ही मरते हैं। इस देश में करीब नब्बे हजार लोग व सारे विश्व में करीब दस लाख लोग प्रति वर्ष आत्महत्या द्वारा अपनी जीवन लीला खत्म कर देते हैं। इनमें बच्चे बूढ़ों से ज्यादा युवा होते हैं। इससे इस समस्या की गंभीरता और भी बढ़ जाती है। इस समस्या के लिये मुख्यतः बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा और बड़ी तेजी से बदलती जीवन शैली को जिम्मेदार माना जाता है। परंतु भीतर से सभी के लिये एक ही वजह जिम्मेदार होती है, वह है, मानसिक स्तर पर कमजोर होना, रूग्ण होना और एक सही परिपक्वता



परिपक्वता की कमी। अगर स्वयं प्रेरणा से इसका इलाज किया जाय तो इस रुग्णता से उबरा जा सकता है। अगर जीवन को संयमित और संतुलित बनाया जाय तो इससे बड़ी आसानी से बचा जा सकता है।

मैं भी इस संकट से उबरने में सफल रहा। आत्महत्या और मृत्यु मेरे जीवन का एक अत्यंत निकट का अनुभव रहा है। इस मानसिक रुग्णता से गुजरते समय मुझे मेरे एक नये मित्र श्री विनेश बोधनकर का सहारा मिला। उसने मुझे एक ध्यान-शिविर करने का विशेष आग्रह किया। दरअसल यह एक उपचार ही था जिसे मैंने इगतपुरी के एक अति विशाल सुव्यवस्थित ध्यान केंद्र में पाया। कल्याण मित्र श्री सत्यनारायण गोयन्काजी के मार्गदर्शन में मैं स्वस्थ हुआ, संयमित हुआ। अध्यात्म के बारे में मेरी अपनी एक नयी सोच बनी जो इसी ध्यान पद्धति से प्रभावित है। वह सकारात्मक है। वह सभी तक पहुँचे। इस बहाने जीवन का एक उजला पक्ष उजागर हो। साथ ही आत्महत्या का एक नकारात्मक पक्ष भी सभी के सामने आये। किसी भी तरह से आत्मघात करनेवाला व्यक्ति यह कुविचार हमेशा-हमेशा के लिये छोड़ दे, यही मंगल कामना इस किताब की रचना का कारण बनी।

इस किताब को मैंने लिखा कम है और संकलित ज्यादा किया है। सभी धर्मों के तर्कसंगत सुविचारों को मैंने इस किताब में आवश्यकतानुसार स्थान दिया है। इसलिये इस किताब में मेरी भूमिका लेखक की कम और संकलनकर्ता की ज्यादा है। परंतु लक्ष्य एक ही है कि इसे पढ़नेवाला व्यक्ति



व्यक्ति हमेशा-हमेशा के लिये आत्मघाती विचारों को छोड़ दे। जीवन से भागने की बजाय उसका सामना करने के लिये तैयार रहे और आत्महत्या करने से पहले अपने भविष्य के बारे में तर्कसंगत आधार पर पुनर्विचार करने हेतु बाध्य हो। इसी मंगल कामना के साथ।

श्री परमानंद पांडेजी व श्री तेजपाल सिंहजी ने इस संक्षिप्त उपन्यास को सजाने व संवारने में बहुत मदद की है। इस किताब को छापने में डॉ. सागर खादीवाला का प्रोत्साहन व प्रक्षेप प्रकाशन का सहयोग भी रहा है। श्री मिलिंद लक्ष्मण फुलझेलेजी का भी विशेष प्रोत्साहन व योगदान रहा है। उपरोक्त उल्लेखित सभी महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ। सधन्यवाद।

जी. प्रकाश

आपका

नागपूर - ४४० ०१७

डियर मम्मी डैडी,

यह मेरा आखिरी और अंतिम प्रणाम है। आप जैसे माँ-बाप सभी को मिलें पर मेरे जैसा सतानेवाला लड़का किसी को न मिले। शुरू से लेकर अंत तक मैं आप को तकलीफ ही देता आया हूँ। अब मैं इस तकलीफ का अंत कर देना चाहता हूँ क्योंकि यह तकलीफ मेरी सहनशक्ति से बाहर होती जा रही है।

मैं एक असफल आदमी का जीवन बिल्कुल जीना नहीं चाहता, मैं इस निराशा से बाहर आना चाहता हूँ। एक नयी जिंदगी, एक नयी शुरूआत की खोज करना चाहता हूँ। आप मुझे इस दौड़ से बाहर निकलने की इजाजत दें, क्योंकि मैं यह दौड़ हार चुका हूँ।

आप मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे और मैं इंजीनियर बनना चाहता था। पर मैं कुछ भी नहीं बन सका। मैंने हार मान ली है। एक हारे हुये आदमी को इस दुनिया में जीने का कोई हक नहीं है। इसलिए मेरा मर जाना ही बेहतर है। आप लोग मेरी खातिर मेरे मरने की थोड़ी तकलीफ सह लेना, मुझे एक बड़ी तकलीफ से मुक्त करने के लिये। कष्ट के लिए क्षमा। इस जीवन की सारी जरूरतें पूरी करने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

आपका

आनंद



इतना लिखकर वह रुक गया था। दुःख के बोझ से थक गया था। आँखें बंदकर आनंद उसी आराम कुर्सी पर लुढ़क गया। उसके सिर के ठीक ऊपर एक फाँसी का फंदा उसका इंतजार कर रहा था। वह उसके गले का हार बनकर उसको उसी से छुटकारा दिलानेवाला था। यह दुष्कृत्य वह पूरे होशो-हवास में करने ही जा रहा था कि अचानक एक चमत्कार हुआ। उसका कक्ष एक अद्भुत मायावी सुगंध से भरने लगा था। उसे महसूस करते-करते वह एक गहरी सम्मोहन की अवस्था में चला गया था। इस बहाने एक भली प्रेत-आत्मा ने उसमें प्रवेश पाया था। वह उसका वही छोटा चाचा था, जिसने कभी इसी कमरे में आत्महत्या की थी। आज उसी के इशारे पर वह तनकर बैठ गया था। कुछ दुबारा लिखने लगा था। बहुत ही सुंदर अक्षरों में जिसे बड़ी आसानी से पढ़ा जा सकता था। बड़ी आसानी से समझा जा सकता था।....

प्रिय आनंद,

एक दिन अचानक मेरी नींद खुली और मैंने स्वयं को अकेला एक बड़े कमरे में बंद पाया। चारों ओर एक कतार में मेज लगी हुयी थी, ऊपर बंद पंखा टंगा था और नीचे मैं बैठा था। मेरे ठीक सामने एक हरे रंग का बड़ा ब्लैकबोर्ड टंगा था। यह कक्ष किसी निर्जन स्थान पर बने मंदिर की भाँति एक असीम आध्यात्मिक शांति में डूबा हुआ था।

मैं अपने इस विशाल स्कूल के परिसर के सजाटे को अपने भीतर बहुत गहराई तक महसूस कर रहा था। यह सजाटा मुझे बहुत प्रिय है। यह मुझसे बहुत निकट है और मैं भी



इसके बहुत निकट हूँ। यह मेरा स्कूल है, मुझे यह बहुत प्रिय है। यहाँ की हर वस्तु से मेरा बहुत गहरा लगाव है। यहाँ की हर वस्तु से मेरा बहुत करीब का नाता है-चाहे यहाँ के शिक्षक हों या खेल का बड़ा मैदान, लायब्रेरी हो या प्रयोगशाला, विशाल बरामदा हो या प्रिंसिपल। तुम पूछोगे कि यहाँ के विशाल बरामदे का प्रिंसिपल डी.यू. नाथानी से क्या संबंध है? कभी उन्होंने यहीं पर प्रार्थना के बाद दो मिनट के लिये मौन रखकर खड़े रहने का नियम बनाया था। क्षण भर में मौन सुंदर कमल के फूल जैसा खिल उठता था और अपनी खुशबू चारों ओर बिखेर देता था। क्षण भर में हजार विद्यार्थियों की उपस्थिति अनुपस्थिति में बदल जाती थी। सारा वातावरण इस संगीतमयी शांति में डूब जाता था। संगीतमयी शांति इसलिये कि चिड़ियों की चहचहाहट के सिवाय दूसरा कोई भी शोर सुनायी नहीं देता था। एक ऐसा अनोखा प्रयोग हमारे गुरुजनों ने इसी सिंधी हिन्दी स्कूल में किया था।

इसका स्थायी प्रभाव मेरे मन पर पड़ा था। उसी सुकून और शांति की तलाश में मैं सारा जीवन भटकता रहा ..... बिना रुके उसके पीछे दौड़ता रहा।

कभी मैं इस विशाल स्कूल के परिसर में डगमग-डगमग करता आया था। बहुत छोटे-छोटे कदम लेकर आया था। बहुत छोटे-छोटे जूते पहनकर आया था। इस ऊँची इमारत की तुलना में बहुत बौना बनकर आया था। कौतूहलवश इस स्कूल को एक अजायबघर समझ बैठा था। यह स्कूल भी मेरे लिये एक अजायबघर से कम नहीं निकला। पल-पल मुझे यहाँ



अनोखे आश्चर्य से भरे किस्से सुनने को मिलते थे। क्षण-प्रतिक्षण मुझे यहाँ आश्चर्य से भरी अनोखी जानकारी का इंतजार रहता था। एक नयी उमंग, उत्साह, आत्मविश्वास मुझे इसी स्कूल ने दिया था। मेरे अंतर्मन मन में आशा के प्रखर-दीप भी इसी स्कूल ने जलाये थे।

मैं पूरे दस साल यहाँ पढ़ा था। यहीं मैं पला था, बढ़ा था, खेला था, कूदा था। नीली स्याही से होली भी मैंने यहीं खेली थी। छिप-छिपकर तितलियों को देखने का मजा भी मैंने यहीं लूटा था। इसी खेल के मैदान से बेर की गुठलियाँ उठाकर न जाने कितने ही दोस्तों को अपना निशाना बनाया था। क्षण-प्रतिक्षण आनंद - उल्लास का उत्सव मैंने इसी स्कूल में मनाया था। शायद इसी वजह से यह स्कूल छोड़ने के कई वर्षों बाद तक, ये कमरे, शिक्षक, पढ़ाई-लिखायी, लड़कियाँ, हँसी-खुशी, खेल, उमंग मेरे सपनों में तैरते रहे थे।

परंतु उस दिन अचानक अकेला स्वयं को एक बड़े कमरे में बंद पाकर मैं सहम गया था। घबराहट से भर गया था। वस्तुस्थिति समझ में नहीं आ रही थी। आखिर क्यों मैं इस कमरे में बंद हूँ? तुरंत दरवाजे की ओर दौड़ लगाई। उसे खोलने की कोशिश की, पर वह तो हिलने का भी नाम नहीं ले रहा था। मैंने तुरंत दूसरी खिड़की की ओर दौड़ लगाई। बेंच पर चढ़कर बाहर झाँका ही था कि मैंने स्वयं को कमरे से बाहर खुले बरामदे में पाया। अचानक स्वयं को बाहर पाकर मैं जितना आश्चर्यचकित हुआ था, उतना घबराहट से भी भर गया था।





घबराहट में मेरे कदम घर की ओर मुड़े। चलने की गति तेज हुई। शायद दिन के दस बज रहे थे। सूर्य-देवता नाक की सीध में आ खड़े हुये थे। सारा रास्ता चिर-परिचित लोगों से भरा पड़ा था। पर न जाने क्यों राह चलता हर आदमी मुझे नजरअंदाज कर रहा था, मुझसे आँखें चुरा रहा था। रास्ते का पहला, दूसरा, तीसरा मोड़ पार करते ही मेरे साथ एक छोटी भीड़ आ मिली थी। शायद वह भी मेरे साथ-साथ मेरे घर की ओर ही जा रही थी। घर पर दूर से ही एक बड़ी भीड़ जमा दिखाई दी।

नजरअंदाज कर रहा था, मुझसे आँखें चुरा रहा था। रास्ते का पहला, दूसरा, तीसरा मोड़ पार करते ही मेरे साथ एक छोटी भीड़ आ मिली थी। शायद वह भी मेरे साथ-साथ मेरे घर की ओर ही जा रही थी। घर पर दूर से ही एक बड़ी भीड़ जमा दिखाई दी। भीड़ को चीरते हुये जैसे ही मैं अंदर की ओर दाखिल हुआ। मेरे सामने एक आदमी का शव सफेद कपड़ों में लिपटा पड़ा था। मेरी माँ शव के सिर को अपनी गोद में रखकर दहाड़ें मार-मारकर रो रही थी। शव पर आँसू बहा रही थी। कभी अपनी छाती पीटने लगती, तो कभी अपने बिखरे बालों को नोचने लगती थी। मुझे सोचने का भी मौका नहीं मिला था, माँ के आँसू देखकर मैं भी उनके साथ रो पड़ा था। अपने शव को पहचानने में मुझे भी थोड़ी देर लगी थी। आखिर आज तक मैं स्वयं को आईने में ही देखता आया था। प्रत्यक्ष देखने का यह पहला मौका था।

यह मैं था .... यह मेरा शव था..... । बाहर निकला

हुआ आदमकद हमशक्ल में कौन हूँ? इसी शरीर का अंश या उससे अलग? मैं पूरे पच्चीस साल इसी शरीर में घुल-मिलकर रहा था, इसका अभिन्न मित्र बनकर रहा था। आज उससे अलग होकर मैं अपनी पहचान खो बैठा था। मेरे शव पर रोनेवालों से भी ज्यादा मैं रो रहा था। आज मैंने एक ऐसा दुःख पाया था जिसे मैं किसी के साथ बाँट नहीं पा रहा था। किसी के गले से लिपटकर रो नहीं पा रहा था। यहाँ तक कि अपनी माँ के साथ भी नहीं। कितनी बार उसके आँचल में छुपकर रोया था, आँसू बहाए थे और मेरी माँ ने भी मेरे जख्मों पर फूंक मारकर मेरे दर्द को भगाया था। पर आज मैं उसकी ऐसी हर प्यार भरी फूंक के अहसास के दायरे से बाहर आ गया था। यह मातम से भरा वातावरण मुझे यह सोचने के लिये मजबूर कर रहा था कि कहीं मैं बहुत गलत हूँ। स्वयं की हत्या का अपराधी हूँ। इन सबका कुसूरवार हूँ। लगातार यही अपराध बोध मुझे संतप्त किये जा रहा था। चारों ओर मातम का माहौल छाया हुआ था। जिसे देखो वही रो रहा था, मेरे शव पर आँसू बहा रहा था। कुछ लोग मेरे शव के अत्यंत निकट बैठे थे। वे मेरे रिश्तेदार थे, जो सिर्फ इसी दिन पर निकट आने के लिये बने थे, जो सिर्फ मातमपूस्ती के लिए इकट्ठा हुए थे और रस्मी आँसू बहा रहे थे। रो रहे थे सिर्फ मेरे वे दोस्त, जो हर दिखावे से बाहर अंतिम पंक्ति में खड़े थे। वे मेरे अंतरंग मित्र थे। सुख-दुख के सच्चे साथी थे। उनके आँसू मेरे आँसू थे।

अब उनके आँसू मुझ पर भारी पड़ने लगे थे। जीवन को एक बार फिर से उसी रूप में जीने की इच्छा प्रबल होने लगी थी। उपाय सूझने लगे थे। पूरे प्राण-प्रण से मैंने अपने शरीर को पुनर्जीवित करने की सोची। यह सोचकर मैं झट से अपने शरीर में दाखिल हो गया था। अपनी छाया रूपी काया को अपने शरीर के आकार में मिलाया। सिर्फ पैर ही शव से बाहर जा रहे थे, उसे अंदर की ओर खींचा।

आँखे बंद कीं। कुछ पल शरीर में बिताये। शरीर के भारीपन को महसूस करने के लिये कुछ पल कल्पना में बिताये। बाहर का रुदन मुझे शरीर में निश्चित होकर सोने नहीं दे रहा था। परंतु कमोबेश वह मेरे प्रयास को बल ही दे रहा था। जब सारी माँसपेशियों को खींचकर अपने शरीर को झकझोरकर हिलाने की कोशिश की तो मैंने स्वयं को शव से बाहर

पाया। शव को ज्यों का त्यों पड़ा था। आखिर मेरे पास ऐसे निरर्थक प्रयास के सिवाय क्या बचा था? प्राण लेना मेरे बस में था, पर उसे देने में मैं पूरी तरह से असफल रहा था। उस वक्त मैंने हार नहीं मानी थी। बिना रुके बार-बार शरीर में दाखिल होता रहा और अपने शव को जगाने का प्रयास करता रहा। सिर्फ एक चमत्कार की आशा में कि मैं दुबारा जिंदा हो जाऊँगा। सभी को आश्चर्यचकित करके रख दूँगा। सभी से माफी माँग लूँगा। दुबारा ऐसी गलती कभी न करने की कसम खाऊँगा। पर सर्वशक्तिमान प्रकृति को यह मंजूर नहीं था। उसकी नज़र में यह अपराध क्षमा के काबिल नहीं था, अक्षम्य था!

इस बीच धार्मिक रीतिरिवाज के अनुसार मेरे शव के ईद गिर्द सारे क्रिया-कर्म चलते रहे। मेरे शव को ठिकाने लगाने की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। मेरे शव को हल्दी लग चुकी थी। मुझे सफेद कपड़ों में लपेटा जा चुका था। बारी-बारी से एक के बाद एक फूलों के हार मेरे शव पर पड़ने लगे थे। सारे पास-पड़ोस के लोग मेरे अंतिम दर्शन के लिये उमड़ पड़े थे। यह मेरे लिये उनका आखिरी सलाम था। खाक में मिलने के बाद यह रंग, रूप, आकार अस्तित्वहीन होनेवाला था। सभी की नजरों से ओझल होनेवाला था। स्मृतियों के अधीन होनेवाला था।

थोड़ी देर बाद मेरी अर्थी मेरे चार दोस्तों के मजबूत कंधों पर सवार हो गयी थी। पर उसी समय मेरी आँखों के सामने एक अत्यंत करुण दृश्य उपस्थित हुआ जिसकी यादकर आज भी मैं रो पड़ता हूँ। मेरी माँ और बहन, दोनों मेरी अर्थी को पकड़कर झूल गयी थीं। वे मुझे जाने देना नहीं चाहती थीं। उनका मन यह मानने को तैयार ही नहीं था, कि मैं मर सकता हूँ या स्वयं को मार सकता हूँ। पुरुषों में मैं ही उनका आखिरी बड़ा बचा हुआ जवान सहारा था। बड़ी मुश्किल से उनको मेरी अर्थी से छुड़ाया गया था। बुजुर्गों ने उनको ढाँढ़स बंधाया था। मेरी शवयात्रा अपनी राह पकड़ चुकी थी। राम नाम सत्य है, सत्य बोलो सत्य है, की मातमी धुन के साथ वह आगे चल निकली थी। बड़ी इज्जत के साथ मेरे इष्ट-मित्र, रिश्तेदार कंधे पर कंधा बदलते रहे और मेरी शव यात्रा को आगे बढ़ाते रहे। सच कहा है किसी ने कि प्रत्येक मनुष्य को उसके जीवन में कम से कम तीन बार सम्मान जरूर मिलता है। पहली बार जब वह जन्म लेता है।



दूसरी बार जब वह शादी करता है, और तीसरी बार जब वह मरता है। अंतिम सम्मान उसके सारे जीवन का निचोड़ होता है। लोगों को उससे कितना फायदा हुआ और कितना कम से कम नुकसान पहुँचा, इसी पर निर्भर होती है अंतिम यात्रा की भीड़। मेरी अंतिम यात्रा में भी पर्याप्त भीड़ थी। जो इस बात की गवाह थी कि लोगों को मेरे जीवन की उपस्थिति से फायदा न भी हुआ हो, पर नुकसान भी नहीं पहुँचा था। इस दुःख भरे क्षण में मुझे सिर्फ इसी बात का संतोष था, दिली सुकून था।

बड़े भाग्य से हम मनुष्य जीवन में आते हैं। इसके बावजूद अगर हम किसी का भला न कर सके तो बुरा भी नहीं करना चाहिये। कर्मों का यही निचोड़ शरीररहित जीवन में बहुत उपयोगी साबित होता है। आखिर व्यक्ति के अच्छे कर्म ही उसके अच्छे मित्र साबित हो सकते हैं। यही उसके भावी जीवन की सीढ़ियाँ बनते हैं। उसकी प्रज्ञा को जागृत रखते हैं। उसकी बुद्धि को बल देते हैं।

मेरी शव-यात्रा शमशान घाट पर पहुँच चुकी थी। अन्य लोगों के साथ मैंने भी अपने चेहरे के अंतिम दर्शन किये। घोर निराशा में डूबकर मेरा चेहरा काला पड़ चुका था। थोड़ी देर बाद मेरे शव का चेहरा भी ढँका जा चुका था क्योंकि उस पर लकड़ियों की एक घनी चिता रची जा चुकी थी। क्षण भर बाद मेरी चिता की आग आसमान को छूने लगी थी। मैं धू-धू करके जल उठा था। चिता की आग कितनी तेज होती है। क्षण भर में जलाकर सबकुछ राख कर देती है। आदमी के व्यक्तित्व को

बनने में देर जरूर लगती है परंतु बिगड़ने में देर नहीं लगती। वर्षों से संभाला जीवन क्षण भर में राख बन जाता है, मिट्टी में समा जाता है। सचमुच यह शरीर कितना नश्वर है! कितना क्षण-भंगुर है! सच ही कहा है किसी ने कि इससे ज्यादा लगाव नहीं रखना चाहिये। परंतु मेरी तरह जीवन से इतनी घृणा भी नहीं करनी चाहिये कि स्वयं को माफ करना मुश्किल हो जाय।

आग उगलती चिता को आज मैं पहली बार नहीं देख रहा था। इससे पहले भी निराशा से भरे जीवन के अनेक क्षण मैंने यहीं इसी घाट पर गुजारे थे। अनगिनत बार शवों को आग में धू-धू करके जलते हुये देखा था। राख में बदलते हुये देखा था। कई दिनों तक लगातार मैं यहाँ आता रहा था।

जलती चिताओं में मैं जीवन के कुछ नये अर्थ ढूँढने लगा था। मेरे लिये आदमी का इस रूप में जलना और राख में बदलना किसी आश्चर्यजनक घटना से कम नहीं होता था। लगता था एक दिन पहले वही आदमी कितना सक्रिय रहा होगा, कितने ही लोगों की आँखों का नूर रहा होगा.... जीवन ऊर्जा के समाप्त होते ही वह कितना निष्क्रिय-निर्जीव हो गया मानो इसे सूखी लकड़ी जैसा जला देने के सिवाय दूसरा कोई उपाय ही न बचा हो। फिर इस गलाकाट स्पर्धा का हिस्सेदार बनने का क्या फायदा? इतना तनाव व दुःख झेलने का क्या औचित्य? जबकि सच यही है कि मृत्यु मनुष्य से उसकी कड़ी मेहनत से अर्जित की गयी सारी चीजें छीन लेती है। पर इसका एक सकारात्मक पक्ष भी तो है। मनुष्य मृत्यु के बहाने उन तमाम

दुःखों, तनाव, क्लेश, होड़ ऋण से भी छुटकारा पा लेता है, जिनसे कभी जीते जी मुक्ति उसे असंभव प्रतीत होती है। मृत्यु मुक्तिदायिनी है। वह सुखदायी है। वह एक नया जन्म, एक नया जीवन, एक नयी पाठशाला, खेल का नया मैदान, एक नयी उमंग, उत्साह का शुभ आरंभ भी तो है। मैं इस पीड़ा से पार एक नये जीवन के सपने देखने लगा था। मुझे मौत के प्रति एक अजीब प्रकार का बेचैनी भरा आकर्षण महसूस होने लगा था, जो मुझे अपनी ओर चुंबक की भाँति खींच रहा था। मैं भी उसकी ओर खिंचा चला जा रहा था, मैं उसे गले लगाकर गुमनाम हो जाना चाहता था। कहीं खो जाना चाहता था। किसी तरह से इस पीड़ा से मुक्त हो जाना चाहता था। कहीं अंधेरे में अंधेरा बनकर खो जाना चाहता था।

मेरे इस नकारात्मक सोच को बल देने के लिये मेरे पास कुछ पर्याप्त कारण थे। मेरे जीवन में कुछ ऐसी कठिन परिस्थितियाँ निर्मित हो गयी थीं, जिनके सुलझने की उम्मीद लगभग खत्म हो गयी थी और मैंने घोर निराशा में डूबकर आत्महत्या करने का निर्णय लिया था।

इसकी मुख्य वजह मेरी बेरोजगारी थी, यह मुझे मेरी शिक्षा ने दी थी। अन्यथा मेहनत मजदूरी करके अपना पेट पालने में मुझे जरा भी शर्म नहीं आती। भौतिक शास्त्र में एम.एससी., बी.एड. करके भी मैं एक मामूली शिक्षक की नौकरी पाने तक में असफल रहा था। इस तरह की नौकरी पाने के लिये दो चीजें सबसे ज्यादा जरूरी होती हैं। उनमें से एक है पैसा व दूसरी थोड़ी ऊँची राजनीतिक पहुँच। ये दोनों अतिरिक्त योग्यतायें मेरे पास नहीं थीं। एक प्रकार से रोजगार हासिल करना मेरे लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। सरकारी नौकरी मिल जाती तो मैं सभी के साथ सुख बाँट सकता था अन्यथा दुःख के अलावा देने के लिये मेरे पास कुछ भी नहीं बचा था। इस दुःख से बचने के लिये मैंने अनेक प्रयास किये थे। जगह-जगह लिखित परीक्षा देने के बहाने मैं सारा देश मुफ्त में घूम आया था। कितने ही रेल्वे स्टेशनों पर मुरमुरे-फुटाने के सहारे सोया था। पर कहीं से भी मुझे नौकरी का बुलावा नहीं आया।

सरकारी नौकरियाँ तो सिर्फ ऊँची पहुँचवालों के लिये आरक्षित होकर रह गयी थीं। क्योंकि यह देश संभवतः नैतिक रूप से नष्ट हो चुका था, पूरी तरह से भ्रष्ट हो चुका था। सारे संसार में भ्रष्टतम बनने की होड़ में लगा था। इसके लिये उसका शिखर ही जिम्मेदार था। चरित्रहीन लोग सत्ता पर सवार होते आये थे। असल में यह व्यवस्था का नहीं, बल्कि व्यवस्थापकों का दोष था। उसके रक्षक ही उसके भक्षक बन गये थे।

फिर भी अगर सरकार सोचती तो इसका हल पा सकती थी। रोजगार के अवसर कम करनेवाले प्रयासों को हतोत्साहित करती। हाथों के स्थान पर मशीनों को नहीं लगाती। ऐसे प्रयासों को गंभीर अपराध करार देती। एक घर से सिर्फ एक ही व्यक्ति को नौकरी देती, न कि दोनों पति-पत्नी को। सेवानिवृत्ति की उम्र कम करती।

इसके अलावा वह सरकारी नौकरियों को सिर्फ उदर-पोषण का साधन बनाती, न कि अच्छी जीविका चलाने का साधन। नई निकलनेवाली प्रत्येक नौकरी को वह दो तीन भागों में बाँट कर उपलब्ध करा सकती थी। बेरोजगारों की जमात तो आधे काम व आधे वेतन से संतोष करने के लिये तैयार बैठी थी। यह कम से कम न से तो थोड़ा बेहतर होता। इससे एक पूरी युवा पीढ़ी कुंठित होने से बच जाती, निराशा-विषाद के दौर से बाहर निकल जाती।

इससे भी संतोष न होने पर वह स्वरोजगार को अपना लक्ष्य बनाती। देश के विकास को भी एक नयी गति मिलती। सरकार के पास ऐसे सकारात्मक सुझावों की कोई कमी नहीं थी। पर उसने इसे अनसुना करना ही बेहतर समझा था, क्योंकि उनकी रूची इस समस्या को सुलझाने में बिल्कुल नहीं थी।

पर युवा शक्ति इससे रुकने वाली नहीं थी। वह तो बहता पानी थी, बहने के उपाय ढूँढना उसका काम था। वह भी मुख्यतः दो दिशाओं में बँटकर बहने लगी थी। जो सिद्धांतवादी थे, व्यवस्था में ठोस परिवर्तन लाना चाहते थे, वे या तो नक्सलवादी बन गये थे या आतंकवादी। सरकार के पास इनके लिये एक बहुत ही सस्ता और सरल उपाय था। वह था बंदूक की गोली। निराश युवक ने यह रास्ता व्यवस्था से आशा भंग होने की वजह से चुना था। ऐसी व्यवस्था का ऐसे जेहादियों के हाथों ढह जाना ही बेहतर होता, मगर ऐसे दुस्साहसी लोगों की कमी थी, परंतु जो सिद्धांतहीन थे, अवसरवादी थे, जिनमें नैतिकता की कमी थी उन्हें निराश होने की कोई जरूरत नहीं थी। उनके लिये यह देश अवसरों से भरा था। या तो वे चोर लुटेरे बन गये थे अथवा राजनीति में चले गये थे। राजनीति ऐसे लोगों की एक बड़ी पनाहगाह बन गयी थी, इसलिये व्यवस्था को भ्रष्ट होने में देर नहीं लगी थी पर जो दोनों में से किसी एक रास्ते पर चल नहीं सकते थे, जिनका मनोबल कमजोर था, उनके लिये घुट-घुटकर जीने के सिवाय या आत्मघात करने के अलावा दूसरा कोई भी उपाय बचा नहीं था। उनमें से मैं भी एक था, जिसकी भावी जिंदगी इस समस्या की भेंट चढ़ चुकी थी। मैं हर तरफ से निराश नाउम्मीद हो चुका था। आखिर में थक-हार कर मैंने परीक्षाओं में बैठना, नौकरियाँ ढूँढना छोड़ दिया था।

अब मैं एक गुमनाम-सी जिंदगी जीने लगा था। अपने ही लोगों की निगाहों से बचने लगा था। जहाँ जाओ वहीं पूछा जाता, “नौकरी लग गयी क्या? फिलहाल क्या कर रहे हो?” अब ज्यादा से ज्यादा समय घर से बाहर दूर एकांत में बीतने लगा था। कभी मुर्दाघाट पर तो कभी स्कूल के मैदान पर। इस जटिल जीवन से बचने का, तमाम पीड़ाओं से मुक्त होकर शून्यता में विश्राम लेने का विचार मेरे मन में जोर पकड़ने लगा था।

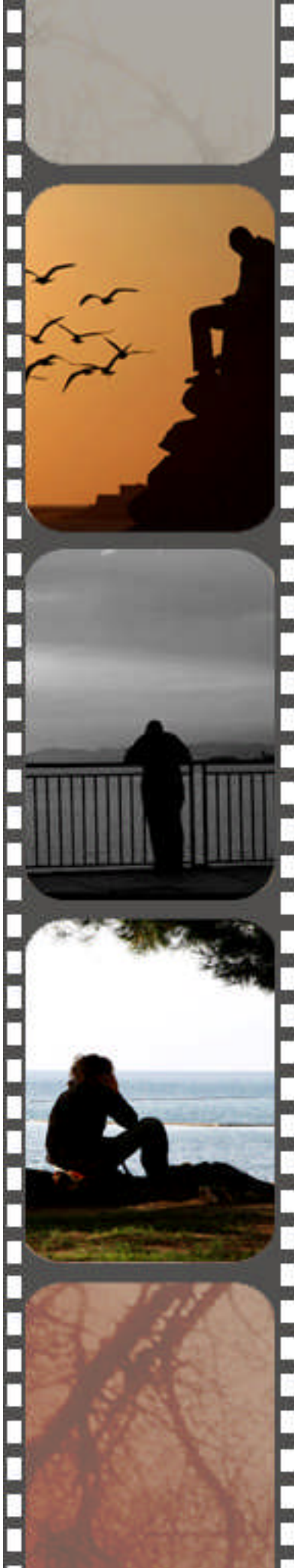


एक दिन इस आग को जलने के लिये मेरे घर में ही ईंधन मिल गया और मेरा मन चिता की आग की तरह धू-धू करके जल उठा था। उस दिन आवेश में आकर पिताजी ने मुझे कुछ परिचित लोगों के सामने डांटा था। बाहर जाकर कहीं मजदूरी करने अथवा किसी कुँ में डूब मरने की सलाह दी थी। मैंने भी पहले की बजाय दूसरी सलाह को अपने हित में माना। उस दिन इसी घर में, इसी कमरे में, ऐसी ही काले घने बादलों में छिपी अमावस्या की रात को मैं एक रस्सी के सहारे झूल गया था। स्वयं को काल बनकर निगल गया था। सभी की नजरों से दूर चला गया था, सभी से नाता तोड़ लिया था मैंने।

उस दिन मैं अपने जीवन के उस अंधे मोड़ पर अकेला खड़ा था, जहाँ से वापस लौटना मेरे लिये संभव नहीं था। इस जीवन को फिर से उसी रूप में जीना मेरे बस में नहीं था। न आगे जाने का रास्ता बचा था और न पीछे लौटने का। मैं एक काल-कोठरी में कैद होकर रह गया था।

मैं बेघर-बेसहारा हो गया था। अज्ञातवास की यातनायें झेल रहा था। मैं अपने आप को इस दुनिया का सबसे अभागा आदमी समझने लगा था क्योंकि मैं होकर भी जैसे नहीं था। चाहकर भी कुछ करने की ताकत मुझमें से निकल चुकी थी। श्रम मेरे भाग्य से हमेशा-हमेशा के लिये विदा हो चुका था। मैं सभी के और सभी मेरे स्पर्श से बाहर निकल चुके थे। इस दुनिया में मुझसे ज्यादा दुःखी व्यक्ति और कौन हो सकता था, जो सबके लिये मरकर भी मरा नहीं था। इस दुनिया से अपने संपर्क सूत्र काट नहीं पाया था। इस दुनिया से बचने के लिये मैंने स्वयं की हत्या की थी, पर मैं उसी दुनिया में पहले की भाँति जी रहा था। स्वयं को कोस रहा था। मैंने उस जीवन के साथ खिलवाड़ किया था जिसे मैंने कभी दिया नहीं था और न ही आज उसे देने में सक्षम था और न ही आज उससे बच पा रहा था। यह मेरे पागलपन और मूर्खता का नतीजा था कि मैं एक अंधे कुँ में जा गिरा था।

मरकर भी इस संसार से मुक्ति असंभव है, यह मेरे जीवन का एक कटु सत्य बनकर उभरा है।



कभी सोचता हूँ कि मैं कितना मूर्ख था। अपने जन्म को ही दुःख का कारण समझ बैठा था। इसके विपरीत मृत्यु का वरण करके भी मैं उस दुःख से बच नहीं पा रहा था। भले ही भूख-प्यास, रुपया-पैसा मेरी आज की जरूरत न रही हो।

धीरे-धीरे मुझे यह बात समझ में आने लगी थी कि मेरा यह जीवन पिछले जीवन में की गयी किसी बड़ी भारी भूल का ही नतीजा है। उस जीवन में मैं अपनी काया के अतिरिक्त उसके मूल को, मन को, उसके व्यक्तित्व को खत्म नहीं कर पाया था। उसे वहीं आधे-अधूरे में जीवंत छोड़कर आया था। परिणामस्वरूप मैंने

यह आधा-अधूरा शक्ति विहीन जीवन पाया था। कभी मैं सोचता था, कहीं मेरा यह बचा हुआ रूप वही तो नहीं, जिसके बारे में कभी भगवान कृष्ण ने कहा था, “तू वह ब्रह्म स्वरूप है जिसे आग जला नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता और न कोई उसे काट सकता; तू निरंतर शाश्वत, अजर, अमर ध्रुव सत्य है; नित्यानंद स्वरूप है।” फिर क्यों मैं उस आनंद उल्लास से दूर हूँ? रंज-ओ-गम में डूबा हूँ? नहीं ..... नहीं मैं वह नहीं हो सकता, वह अवस्था तो सचमुच में लौकिक जीवन से बाहर, मन के संसार से परे की अवस्था होगी, भौतिक प्रभावों से मुक्त अवस्था होगी, अन्यथा मैं आज इतना रंज-ओ-गम से भरा थोड़े ही होता!

मैं सचमुच वही हूँ, जो पहले था। सिर्फ भारहीन हो गया हूँ। शरीरविहीन हो गया हूँ। पदार्थ जीवन से कटकर पूरी तरह से अपदार्थ नहीं बना अन्यथा इस संसार से संपर्क सूत्र कट चुके होते। शून्य बनकर शून्य में विलीन हो चुका होता।

जो नहीं हुआ, वह मैं था, जो न जीवन से बाहर था और न ही भीतर, न पदार्थ था न अपदार्थ। मेरा जीवन मेरे लिये सिर्फ एक अदृश्य रहस्य बनकर रह गया था।

मनुष्य का शरीर एक बंधन जरूर है, पर उस बंधन को ढीला करना पूर्ण मुक्ति नहीं है।

मेरा यह घर, जिसे सजाने सँवारने के मेरे हजारों अरमान थे, वह मेरी अनुपस्थिति में बिखरने लगा था। उजड़ने के करीब पहुँच चुका था। मेरी उपस्थिति उन्हें एक सूत्र में पिरोये रखने के लिये पर्याप्त थी, क्योंकि घर-परिवार हमेशा आशा की किरणों के आसपास ही सुव्यवस्थित होता है, सुदृढ़ होता है। उन्हें आशा थी कि मुझे सरकारी नौकरी मिलते ही घर में पुनः सुख-समृद्धि लौट आयेगी और सबका जीवन खुशहाल हो जायेगा।

वैसे तो तुम्हारे पिता पर भी हमारा बड़ा भरोसा था। वे घर पर बड़े थे। घर के मुख्य आधार स्तंभ थे। उनके भरोसे हम दोनों भाई-बहन ने मिलकर बहुत मौज मस्ती की थी। उनकी तनख्वाह के भरोसे ही हमारा घर चलता था। पिताजी की पेंशन तो केवल उनके पीने के काम आती थी। लेकिन शादी करते ही वे बदल गये। थे। घर की जिम्मेदारियों से बचने के लिये उन्होंने अपना तबादला मुंबई करा लिया था। तब तक तुम्हारा जन्म हो चुका था। घर परिवार के प्रति तुम्हारे पिताजी की उपेक्षा की वजह व मेरे अभाव में हमारी फूल जैसी इकलौती बहन फूलों की तरह मुरझाने लगी थी। वह अपने भावी जीवन के प्रति पूरी तरह से निराश हो चुकी थी। फिर भी वह पूरी तन्मयता के साथ असमय ही बुढ़ापा ओढ़े माँ-बाप की सेवा में जुटी रही। उनसे जन्म पाने के ऋण को उतारने में

में लगी रही। यही एक फर्क होता है, एक जीवित व्यक्ति और मृत व्यक्ति में। एक जीवित व्यक्ति कमजोर होकर भी दूसरों की मदद कर सकता है: वैसी मदद मेरे जैसा मृत व्यक्ति जीवित रहकर भी नहीं कर सकता था।

देखते ही देखते उसने अपने शरीर को बीमारियों का घर बना लिया था। शायद वह टी.बी. की मरीज बन गयी थी। एक उम्र आने के बाद अगर लड़कियों की शादी न हो तो वे कुंठित होना शुरू हो जाती हैं। निराशा में डूबकर अपने जीवन को विषमय बना लेती हैं। ठीक ऐसी ही हालत मेरी प्रिय बहन की हो गयी थी। दुःख, पीड़ा, कुंठा का धीमा जहर पीते हुये वह मौत की तरफ बढ़ रही थी। अपनी काया को सुखा रही थी। मौत के प्रति अपने आकर्षण को बढ़ा रही थी। उसके प्रति अपने भय को घटा रही थी। यह सब कुछ देखकर भी मैं कुछ नहीं कर पाया था। उसे समझा-बुझाकर हिम्मत देने की शक्ति अपनी छाया रूपी काया में जुटा नहीं पाया था, क्योंकि शक्तिविहीन होकर, मूकदर्शक के रूप में जीना मेरी नियति बन चुकी थी। सूखे आँसू पीने के सिवाय मेरे पास दूसरा कोई चारा नहीं बचा था। मेरा जीवन बेबसी और लाचारी का दूसरा नाम बन गया था। एक दिन वही हुआ जिसका मुझे डर था। घर का काम करते-करते वह आँधे मुँह फर्श पर फिसलकर गिर पड़ी थी। फिर वह दुबारा उठ नहीं पायी। वह अर्धचेतन

अवस्था में चली गयी थी। उसका अंतिम समय समझकर पास-पड़ोस के लोगों ने उसे एक सरकारी अस्पताल में भर्ती करा दिया था। दूसरे दिन आधी रात के बाद अचानक उसकी साँस तेज चलने लगी थी। धड़कनें अचानक बढ़कर धीमी पड़ने लगी थीं। वृद्ध व्यक्ति की तरह वह गहरी अर्धचेतन अवस्था में चली गयी थी। पर मैं उत्सुक था, खुश था। अपनी दुनिया में उसका स्वागत करने के लिये तैयार बैठा था क्योंकि मैं अपनी दुनिया में उसके कुछ काम आ सकता था, उसके अकेलेपन को दूर कर सकता था।

मैं उसके बहुत करीब बैठा था। उसके इर्दगिर्द के वातावरण पर कड़ी नजर रखे हुए था। यह आधी रात के बाद का समय था, मैं हल्की पीली रोशनी में उसके चेहरे को देख रहा था। उसका गोरा सफेद मुरझाया चेहरा खिलना शुरू हो गया था, मानो वह एक बड़ी पीड़ा से मुक्त होने जा रही हो। धीरे-धीरे उसकी साँसों के तार भी टूटने लगे थे मानो उन्हें वह खींचते-

खींचते थक गयी हो। अचानक उसकी धीमी साँस भी चलना बंद हो गयी और उसकी गर्दन एक ओर लुढ़क गयी थी। पर आश्चर्य कि मेरी दुनिया में उसका कोई भी रूप-आकार प्रकट नहीं हुआ था। एक हल्की-सी भी आहट पैदा नहीं हुई थी, जिससे मैं उसकी उपस्थिति महसूस कर सकता। एक निर्जीव शरीर के अतिरिक्त मेरे सामने दूसरा कुछ भी नहीं बचा था। यह देख मैं रो पड़ा था। दीपक की लौ हमेशा-हमेशा के लिये बुझ गयी थी। वह मौत की चिर-निद्रा में सो गयी थी। मैं हमेशा-हमेशा के लिये उससे वंचित हो गया था। मैंने उसे दोनों रूपों में खो दिया था। क्षण भर में एक ही कोख से जन्म लेने का रिश्ता टूटकर बिखर गया था।

समझ में नहीं आ रहा था मैं क्या करूँ? कहाँ जाकर ढूँढ़ू उसे? मेरी दुनिया में तो वह थी ही नहीं। वह ऊर्जा शायद कहीं लुप्त हो गयी होगी या महाऊर्जा में समा गयी होगी। यही मानकर मैंने अपनी प्रिय बहन के भविष्य के बारे में संतोष कर लिया था। परंतु स्वयं के प्रति मेरा संतोष बढ़ गया था, क्योंकि मैं प्रकृति से समान न्याय की उम्मीद रखता था। जो मुझे अब तक नसीब नहीं हुआ था।



प्रिय आनंद,

जीवन के बाद मृत्यु है, कम से कम प्रेत योनि तो नहीं। यह मैंने अपनी बहन की असामयिक मौत के अनुभव के बाद अच्छी तरह से जान लिया था। सिर्फ मैं ही एक अपवाद हूँ, आत्मघात करने की सजा हूँ। यह मैंने अपने तहे-दिल से ठीक उसी तरह से स्वीकार किया था जैसे ढाई हजार वर्ष पहले भगवान बुद्ध ने स्वीकार किया था। जीवन में दुःख की कोई न कोई ठोस वजह जरूर है, दुःख-चक्र से बाहर निकलने का रास्ता भी कहीं न कहीं जरूर होगा। मैंने अपने इस जीवन व मृत्यु के बीच के अवकाश को उसी रास्ते को खोजने में लगा देने के बारे में सोचा ताकि फिर से जन्म चक्र के भँवर में पड़ जाऊँ, जीवन को जीव के रूप में फिर से धारण करूँ। पर इससे पहले यह भी जानना जरूरी हो गया था कि मैं कौन हूँ? यह जानना ही मेरा मुक्ति की ओर बढ़ाया हुआ पहला कदम था। यह बहुत छोटा किंतु महत्वपूर्ण था। मैं संपूर्ण काया नहीं, ठोस रूप भी नहीं। जरूरतों से भरा भी नहीं। प्रकृति पर निर्भर भी नहीं। न पूरी तरह से जड़, न चेतन, न क्षयरहित, न भयरहित। फिर भी जीवन की उन्हीं विसंगतियों से जुड़ा हूँ जिनसे पहले जुड़ा हुआ था। फिर मैं कौन हूँ?

मैं संपूर्ण काया नहीं, मात्र उसकी छाया हूँ। मैं शरीर स्वरूप न होकर भी वही यादे, आकांक्षाओं और महत्वाकांक्षाओं का पुलंदा हूँ। मैं यादों का एक पुँज हूँ। स्मृतियों के रूप में ठोस शरीर में से निकली हुई कोहरे की

एक धुँध हूँ। ठोस शरीर के पदार्थ का आनुवांशिक गुणधर्म हूँ। उसका उसी शरीर का, उसी ऊर्जा का एक अंश हूँ। पदार्थ-अपदार्थ के बीच की एक कड़ी हूँ। पदार्थ की भौतिकी के अंतिम सत्य का एक अंश हूँ। न ही पूरी तरह से पदार्थ, न अपदार्थ, बल्कि उनके गुणधर्मों का एक अदृश्य चौथा आयाम हूँ। स्वयं के अंदर झाँकने पर मैंने यही पाया था। स्वयं का वास्तविक स्मरण होते-होते पहली बार मैंने अपनी काया में एक अत्यंत सुखद अनुभूति के प्रवाह को महसूस किया था। मैं एक अलौकिक प्रकार की भारहीनता को अपने भीतर महसूस कर रहा था मानो सोचने के घोड़े चारों दिशाओं में दौड़ पड़ने के लिये स्वतंत्र हो गये हों। स्वयं के बारे में सोचते-सोचते, अपने अंदर झाँकते-झाँकते सारी अनजानी बातें स्पष्ट होने लगी थीं। वे परत दर परत खुलने लगी थीं। अब हर रहस्य एक सच बनकर उभरने लगा था। मैंने जिस शरीर को जिया था, ठोस समझा था, उसका एक हिस्सा पूरी तरह से होशो-हवास, चेतना से भरा था। वह पदार्थ के गुणधर्मों और शरीर के व्यवहार से पूरी तरह प्रभावित था। एक तरह

अंश हूँ। पदार्थ-अपदार्थ के बीच की एक कड़ी हूँ। पदार्थ की भौतिकी के अंतिम सत्य का एक अंश हूँ। न ही पूरी तरह से पदार्थ, न अपदार्थ, बल्कि उनके गुणधर्मों का एक अदृश्य चौथा आयाम हूँ। स्वयं के अंदर झाँकने पर मैंने यही पाया था। स्वयं का वास्तविक स्मरण होते-होते पहली बार मैंने अपनी काया में एक अत्यंत सुखद अनुभूति के प्रवाह को महसूस किया था। मैं एक अलौकिक प्रकार की भारहीनता को अपने भीतर महसूस कर रहा था मानो सोचने के घोड़े चारों दिशाओं में दौड़ पड़ने के लिये स्वतंत्र हो गये हों। स्वयं के बारे में सोचते-सोचते, अपने अंदर झाँकते-झाँकते सारी अनजानी बातें स्पष्ट होने लगी थीं। वे परत दर परत खुलने लगी थीं। अब हर रहस्य एक सच बनकर उभरने लगा था। मैंने जिस शरीर को जिया था, ठोस समझा था, उसका एक हिस्सा पूरी तरह से होशो-हवास, चेतना से भरा था। वह पदार्थ के गुणधर्मों और शरीर के व्यवहार से पूरी तरह प्रभावित था। एक तरह से वह पदार्थ का ही एक अंश था, जो आज लगभग अपदार्थ जैसा होकर भी पदार्थ जैसा ही व्यवहार कर रहा था। वह जी रहा था मेरी पकड़ से मुक्त होकर; छल रहा था मुझे एक

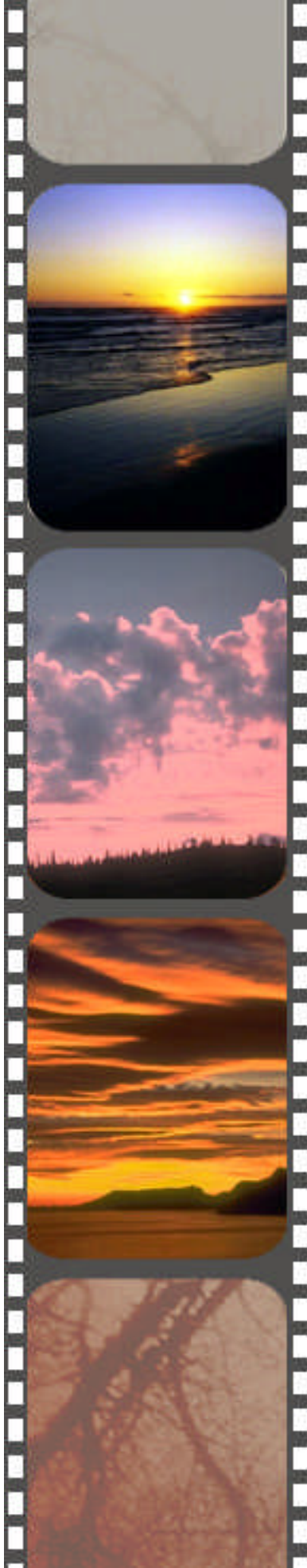


स्वच्छंद पवन बनकर। जिसे कभी मैंने आत्मा समझा था, परमात्मा का एक अंश समझा था। सारे प्रहारों-प्रतिघातों से मुक्त समझा था। जिसे मैंने भौतिक व्यापार से परे की चीज समझा था, अंततः वह चोर मेरा मन ही निकला। जो सभी प्रवृत्तियों का अगुवा था, संस्कारों का मूल आधार था। मानसिक यातनाओं का मुख्य कारण था। जिसे मैंने अपने इसी मनुष्य जीवन में बनाया था। बेहोशी में अपनी संवेदनाओं के आधार पर बनाया था। सुखद संवेदनाओं के प्रती लोभ-आसक्ति जगाकर व दुःखद संवेदनाओं के प्रती द्वेष जगाकर अनियंत्रित मानसिकता युक्त मन बनाया था, जो मेरे गले का फंदा बनकर जीवन-चक्र से बाहर लाकर अंधे कुये में फेंका था। हर कारण से मेरा यह मन मेरे इस प्रेत योनि के बंधन का मुख्य कारण बना था। अनगिनत जन्मों के किसी सुकर्म का यह पुण्यफल था कि मुझे बड़ी आसानी से इस परिवर्तनशील जगत की सारी अनजानी बातें समझ में आ गयी थीं। आज सचमुच में मुझे बहुत खुशी हो रही थी क्योंकि मेरे सुप्त चक्षु जाग गये थे। वे दिव्य हो उठे थे। मेरी अपनी प्रिय बहन के बिछुड़ने का गम खुशी में बदल गया था। सचमुच वह अपने जीवन के परम लाभ को उपलब्ध हुई थी। उसने बड़ी आसानी से मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य को साध लिया था। वह दोनों लोक की पीड़ाओं से बच निकलने में सफल हुई थी। उसे मोक्ष मिल गया था। प्रकृति के धर्म ने उसे क्षमा कर दिया था। यह उसने उसी शरीर को भोग कर, उसकी पीड़ाओं से लड़कर पाया था। एक बार फिर से तपस्वियों की बात सच साबित हुई थी कि जो अपने शरीर के सत्य को जानता है, सत्य उसे उससे स्वतंत्र कर देता है। पदार्थ के बंधन से मुक्त कर देता है। शरीर का धर्म, पदार्थ का गुणधर्म-प्रकृति उसे माफ कर देती है जो उसका बनकर जीता है। निर्लिप्त भाव से जीवन-प्रवाह के साथ उसके अंतिम छोर तक बहते हुए जाता है। उसे ही नाव बनाकर उम्र का दरिया पार करता है। सिर्फ उसे ही प्रकृति धर्म संपूर्ण-मृत्यु की सौगात देती होगी और जो शुद्ध सोना रहता होगा, जो लगभग पूरी तरह से अपदार्थ होता होगा, संस्कार व ज्ञान से पूरी तरह से रिक्त रहता होगा, वह बड़ी आसानी से पूर्व-पदार्थ के बंधन से मुक्त होकर एक बार फिर से एक नये जन्म, एक नये जीवन की शुरुआत का कारण बनता होगा।

शायद इन्हीं सब वजह से मैं अजन्मा रहा। एक नयी शुरूआत, एक नयी पाठशाला, एक खेल के हरे-भरे मैदान से वंचित रहा। वही रिश्ते-नाते, वही स्मृतियाँ, वही दुनिया मेरे साथ रही। आखिर मैं उसी मन को उसी शरीर में विसर्जित करने में असफल रहा था। बस अब उसी के विसर्जन के मार्ग को ढूँढना था। इस प्रेत योनि से मुक्ति, मन के अस्तित्व के लोप के बगैर संभव नहीं है, यह मैंने अच्छी तरह से जान लिया था। किंतु मन से मुक्ति का उपाय उसके बनने की प्रक्रिया को जाने बगैर खोजना असंभव था। इसलिये मुझे एक बार फिर से अपने भीतर डुबकी लगानी पड़ी, स्वयं की जाँच-पड़ताल करनी पड़ी। उसी चीज को लेकर जिसे लेकर मैं किसी दुनिया से आया नहीं था, पर उसी के साथ मैं उसी दुनिया में छूट गया था। उसी के साथ उसी में उलझ गया था, जो मेरी सारी प्रवृत्तियों का आधार था। जिसने मुझे इस नर्क-योनि में बाँधकर रखा था, बस अब उसी पहेली को सुलझाना बाकी था।

सच पूछो तो मेरे मन का निर्माण उन्हीं पंचतत्वों से हुआ होगा जिससे मेरा शरीर बना था। अणु-अणु के जुड़ने से, कोशिका-दर-कोशिका के बढ़ने से, उनके फलने-फूलने से उत्पन्न होनेवाली सुखद-दुखद अनुभूतियों की खुशबू से, प्रत्येक सुखद दुःखद संवेदनाओं के प्रति राग-द्वेष की प्रतिक्रिया व्यक्त करने से ही मेरा यह पागलपन से भरा मन बना होगा। परंतु यह निश्चित है कि उसका विकास कर्ताभाव के पुष्ट होने से ही हुआ होगा। जिस शरीर के फलने-फूलने से मेरा यह उदंड मर्कट-सा मन बना था। उसी काया के कमजोर होने से, उसके जर्जर होने से इसी मेरे मन के अस्तित्व का विसर्जन हुआ होता, अगर आज मैं उसी शरीर में जिंदा होता।

ऐसे समानार्थी शरीर के अभाव में उसके विकल्प ढूँढना था। ऐसे अद्भुत पदार्थों, के मिश्रण को ढूँढना था जिसे लेकर मैं कभी जीवित रहा था। परंतु इस संसार में ऐसे अद्भुत पदार्थों के मिश्रण का मिलना असंभव था। उसके अभाव में सिर्फ मनुष्य ही मेरी मुक्ति का साधन बन सकते थे। परंतु उनकी शरीर सीमाओं को लाँघना मेरे बस में नहीं था। उसके लिये मेरे इस प्रेतयोनि का बल अपर्याप्त पड़ता था। मुझे आज फिर से उसी धरती की शरण में जाना अनिवार्य हो गया था, जिससे मैं हमेशा बचता आया था। जिसका कभी मैंने कोई



मूल्य नहीं जाना था; अब वही हवा, पानी, अग्नि, धूल मेरी मुक्ति के साधन बन रहे थे। आज मुझे सचमुच बहुत खुशी हो रही थी क्योंकि मैं पहली बार एक सच्ची पवित्रता की शरण में जा रहा था।

आज मैं खुशी-खुशी अपनी बाँहों को फैलाकर खुली हवा को समेटने लगा था। नदी के बहते जल में स्वयं को डुबोने लगा था। जलती आग में स्वयं को झोंक देता था ताकि मेरे मन का वही स्वभाव जो कभी उन्हीं के पंचतत्वों के मेल से बना था, वह उसी में विसर्जित हो सके। मेरे मन को निर्मल जल, वायु, अग्नि सोख ले और मुझे मेरा शुद्ध सोना लौटा दे।

अनगिनत बार ऐसा करने पर भी मुझे आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली थी, परंतु मेरा विश्वास मुक्ति के इस मार्ग पर बरकरार था। लगातार इस प्रयोग को दोहराने से एक घटना पहली बार घटी थी। मेरे मन की स्थिरता थोड़ी बढ़ी था

और मेरी सूक्ष्म काया भी थोड़ी शक्ति जुटाने में सफल हुई थी। भय थोड़ा कम हुआ था और मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा था।

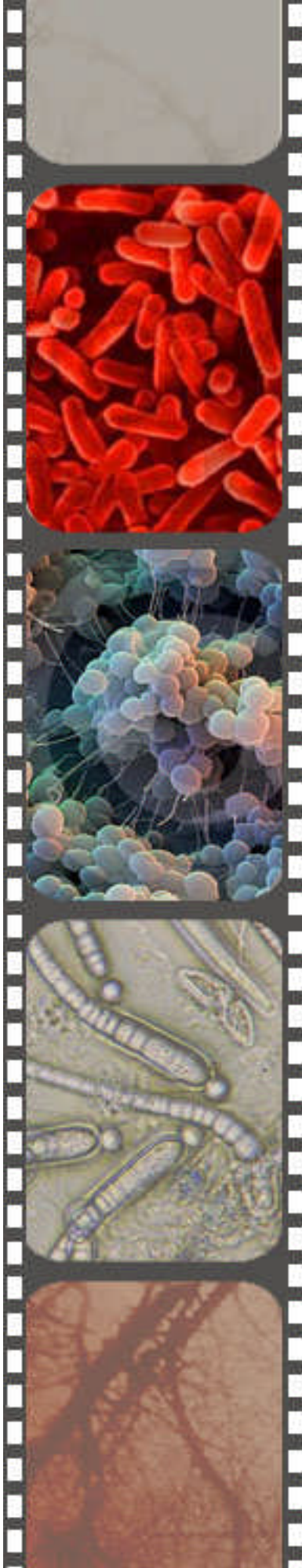
इन सीमित उपलब्धियों से खुश होकर मैं अपने इस मुक्ति के प्रयोग को दोहराता रहा, तटस्थ भाव में स्थापित होता रहा, अपनी समता को पुष्ट करता रहा। अपनी इस नव कायागत सच्चाईयों का दर्शन करते हुये मैं अपने पूर्व के संचित लोभ का संवरण करता रहा। धीरे-धीरे इसके अच्छे परिणाम आने लगे थे। कभी संयोग से ऐसा हो जाता कि मेरी काया का कोई ऐसा अंश छूट जाता, जिसने मुझे धरती के गुरुत्व से बांध रखा था

और मैं स्वयं को बहुत ऊँचे खुले आसमान में पाता। भारहीन होकर पक्षियों जैसा उड़ने लगता था। जितनी बार मैं खुले आसमान से धरती के सौंदर्य को निहारता, मैं एक अद्भुत विस्मय बोध को लेकर वापस लौटता था। अनुभूतियों के सौंदर्य को मैंने अपने भीतर पहली बार महसूस किया था। परंतु यह चमत्कार कुछ पलों के लिये ही होता था। मैं फिर से अपनी इस नव-कायागत भारीपन को महसूस करके धरती की सतह पर आ बैठा था। पर इसका मुझे थोड़ा भी आश्चर्य नहीं होता था और न ही अफसोस क्योंकि मैं यह जानता था कि मेरी यह सूक्ष्म काया बनने बिगड़ने के बंधन से मुक्त नहीं हुई है। उसमें संस्कारों के कुछ ऐसे बीज छुपे पड़े हैं, जो पुनः उन्हीं संस्कारों का निर्माण कर लेते थे, जिनसे मैं मुश्किल से छुटकारा पाने में सफल होता था। वास्तव में मेरा मन भव-बंधन से मुक्त नहीं हुआ था। संस्कारों के बोझ से जितना मैं हल्का हो जाता था, दूसरे ही क्षण में फिर से उतना ही भारी हो जाता था। ऐसी काया की विशेषता लिये मैं जी रहा था। फिर भी मैं पहले की अपेक्षा हल्का हुआ था, शांत और स्थिर हुआ था। दुःखों से उबरा था, सुखों की ओर जा रहा था।

मेरा विश्वास इस मुक्ति के मार्ग पर बढ़ गया था। अब यह प्रयोग मेरी दिनचर्या का एक प्रमुख अंग बन गया था। अब तो सिर्फ एक ही अभिलाषा मेरे मन में सतत पलती रहती थी कि मैं किसी तरह से पदार्थों के संपर्क में बना रहूँ। बची हुई पहचान को खोने के क्रम में लगा रहूँ। मन में जमा जानकारियों को विसर्जित करने का यही एक मार्ग बचा था, जिससे मैं कभी अपनी हत्या की वजह से वंचित रहा था। मेरे जीवन की यह एक निराली विडंबना है कि मैं शुरू से लेकर अंत तक जीवन को खोने की ही लड़ाई लड़ता रहा। अज्ञानतावश कोई भी मनुष्य इस भंवर में न गिरे, इसी मंगल कामना को व्यक्त करना मैंने अपना धर्म बना लिया है। आज मैं उसी धर्म का निर्वाह कर रहा हूँ, तुम्हें एक नेक सलाह देकर, अपनी आपबीती सुनाकर।

प्रिय आनंद,

सच कहा किसी ने कि परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। देर सबेर उसमें फल जरूर लगते हैं। मेरे मन का मूल स्वभाव बदलने लगा था। मैं करने से ज्यादा होने की भावना में दीक्षित होने लगा था। असल में मन का मूल स्वभाव कर्त्ताभाव है। हर मनुष्य अपना सारा जीवन 'मैं-मेरा' का भाव रखकर जीता हुआ और मरता है। अंत में उसका यही स्वभाव उसके गले का फंदा बन जाता है, उसकी संपूर्ण-मृत्यु के आड़े आता है। मेरे मन का यही मूल स्वभाव बदलने लगा था। शायद इसी वजह से मेरी सूक्ष्म काया का भार चमत्कारिक ढंग से घटने लगा था और मैं तीव्र गति से विचरण करने में सक्षम हुआ था। परंतु इसके साथ-साथ मेरी सूक्ष्म काया में एक विशेष प्रकार की शक्ति का भी सृजन होने लगा था। अब तक मैं इसके प्रति अपने लोभ का सँवरण कर उसके अनुचित उपयोग से बचते आया था। पर कमोबेश यह मेरे प्रयोग में मददगार ही साबित हो रहा था। अब मैं कुछ चीजों को पूरी तरह से प्रभावित कर सकता था। अपनी बाँहों में बड़ी आसानी से हवा को समेट सकता था। बहते हुये जल से अपनी सूक्ष्म झीनी काया को धो सकता था। भयरहित होकर अग्नि में प्रवेश कर सकता था। धूल के बवंडर में विसर्जित हो रही भावनाओं को महसूस कर सकता था। शांति और सुकून के साथ इस एक अनोखी शक्ति का सृजन बेमेल था। पर प्रकृति को यही मंजूर था। मेरे इस प्रयोग का यह एक सह उत्पादन था। उसे स्वीकार करने के सिवाय दूसरा



हमारे तुम्हारे भीतर एक अनोखे गणित का समीकरण काम करता है। उसका मूल आधार पदार्थ का अकर्मण्य स्वभाव होता है - कुछ करने का भाव रखे बगैर सब कुछ हो जाना या कर लेना। अगर पदार्थ के इस स्वभाव के साथ मन के स्वभाव का घर्षण न हो, अर्थात् उसके समांतर हो जाये, तो इस विशेष ऊर्जा का सृजन निश्चित है। इसे चमत्कार नहीं कहा जा सकता, यह अपने अहम को बाजू में रखकर पूरी कुशलता के साथ किये गये कर्म का प्रतिफल है। इसका स्रोत हमारे तुम्हारे भीतर ही है, बाहर नहीं। इसके बगैर मेरा जीवन बेजान था, बदतर था। पर आज मैं सजीव हो उठा था, ऊर्जावान हो गया था। जीवन का लुत्फ उठाने लायक बन गया था। पर इतना सब कुछ पाकर भी मैं अपने इस जीवन के भावी लक्ष्य को साध नहीं पाया था। मैं मन की स्थिरता व शुद्धता की उन बुलंदियों को छू नहीं पाया था, जहाँ यह सर्व शक्तिमान प्रकृति मुझे कम से कम क्षण भर के जीवन के लिये चुन सके, फिर से जन्म - चक्र में डालकर एक नयी सजीव देह प्रदान कर सके। लगता है प्रकृति ने प्रत्येक जीव के लिये, उसके मन की स्थिरता और, ज्ञान की रिक्तता के बहुत ऊँचे मापदंड तय किये होंगे? शायद वह पदार्थरहित, ज्ञानरहित, मनरहित अस्तित्व को ही जीव के रूप में धारण करने के लिये चुनती होगी ताकि वह अपनी पूरी स्वतंत्रता के साथ बगैर किसी के हस्तक्षेप के उस जीव को अपना मनचाहा रूप दे सके, चाहे वह कृति क्षणभर के लिये ही अस्तित्व क्यों न धारण करे।

इससे इस बात का अंदाजा लगाना आसान हो जाता है कि मनुष्य के रूप में जन्म लेना किसी भी जीव के लिये कितना कठिन है। यह मनुष्य के हाथ में कतई नहीं है। किसी माँ की कोख में एक दो नहीं बल्कि पूरे नौ-नौ महीनें विस्मृत होकर बैठना किसी साधारण जीव के बस की बात नहीं है। इतने जटिल उद्देश्यपूर्ण जीवन को पाने के लिए उसके योग्य बनना जरूरी है। किसी भी अस्तित्व को इतना जटिल रूप पाने के लिये हस्तक्षेपरहित होना, सारी जानकारियों से रिक्त होना जरूरी है। एक नये सिरे से सब कुछ सीखने के लिये, प्रकृति के गुणों को दुबारा आत्मसात करने के लिये, पुराना सबकुछ भूलना आवश्यक है... ताकि प्रकृति अपने धर्मानुसार उस रूप को गढ़ सके, अपने पर्यावरण के अनुकूल बना सके।

सचमुच मनुष्य जन्म उसकी अच्छी मानसिकता के शिखर के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? उस शिखर पर पहुँचने के लिये किसी भी जीव को अनगिनत जन्मों से गुजरना पड़ता होगा, तपना पड़ता होगा, अपनी स्थिरता को साधना पड़ता होगा। तब जाकर वह अत्यंत दुर्लभ असंभव से प्रतीत होने वाले अत्यंत जटिल जीव की काया धारण करने लायक बनता होगा। इस निष्कर्ष पर पहुँचकर मैंने बड़े भारी मन से मनुष्य के रूप में जन्म पाने की लालसा को छोड़ अपने उस लोभ का सँवरण किया था। सिर्फ जन्म-चक्र में शामिल होने को ही अपना लक्ष्य बना लिया था।

अपने भीतर के एक बड़े अंतर्द्वन्द्व से मुक्ति पाकर मैं बहुत हल्का हुआ था, स्थिर हुआ था। एक नये सिरे से अपनी इस मुक्ति की साधना में रत हो गया। अपने भीतर की शून्यता को साधने में लग गया। प्रकृति के एक-एक पदार्थ से, उसके अलग-अलग रूपों से मैं संपर्क साध रहा हूँ। बारी-बारी से उनका साक्षात्कार कर रहा हूँ। क्योंकि मैं अपने पूर्व जीवन में उनसे संयुक्त रूप से निपटने का अवसर खो चुका था। मैंने उस जीवन को खो दिया था, जो अपने आप में परिपूर्ण था, संपूर्ण था। आज वह असंभव सा है, अत्यंत दुर्लभ है, इसलिये उसे पाना ही मेरा ध्येय बन गया है।



मैं मुक्ति के श्रोत में पड़ गया था। मैं मुक्ति के वृक्ष को पल्लवित करने में जुट गया था। उसमें फल भी लगने लगे थे। मैं उन्हें चखने लगा था। इस प्रेतयोनि का खरा लुत्फ उठाने में मैं आज सक्षम हुआ था। मैं एक साधारण जीव जैसी अमन-चैन-सुकून की जिंदगी जीने लगा था। मानवीय भावनाओं से ऊपर उठने लगा था। फिर भी अपने घर, परिवार से अपना लगाव कम नहीं कर पाया था। माँ से मेरा विशेष लगाव था। मैंने अपने आप को हमेशा उसका ऋणी पाया था। यह उसने मुझे अपनी कोख से जन्म देकर एक नयी सुनहरी दुनिया दिखाकर बनाया था। पर मैंने अपनी हत्या करके इस ऋण से उऋण होने का अवसर खो दिया था। उसकी अत्यंत दयनीय स्थिति देखकर मुझे इसी बात का मलाल था। चाहता तो मेरे अदृश्य हाथ उसकी मदद कर सकते थे, पर मेरा स्मरण उसके लिये दुखदायी साबित हो सकता है, यही सोच मैंने अपने मदद के हाथ पीछे खींच लिये थे।

आज उसका जीवन एक उस सीलन भरे बंद कमरे में सिमटकर रह गया था जहाँ कभी हम पुराना सामान रखा करते थे। यह उसके जीवन का आखिरी पड़ाव था। समय की मार ने उसे असमय ही बूढ़ा कर दिया था। उसका शरीर जर्जर हो गया था। एक लाठी का मोहताज बन गया था। उसके चेहरे पर बुरी तरह से झुर्रियों का जाल बिछ चुका था। मानो यम ने बहेलिया बनकर अपने मौत के जाल को बिछा दिया हो और अब बाकी रह गया था उसमें गिरना.... गिरकर जाल-प्रतिजाल से मुक्त हो जाना। आशा-निराशा-तृष्णा का चक्र पूरी तरह से रूक चुका था, क्योंकि वह



मृत्यु को एक ध्रुव सत्य के रूप में पूरी तरह स्वीकार कर चुकी थी। उसका स्वागत करने के लिये उत्सुक थी।

वह अपनी जरूरतों में सिमटकर रह गयी थी। इन्हीं कारणों से कमजोर शरीर का निवासी कमजोर मन विसर्जन के मार्ग पर चल पड़ा था - वही मन, वही स्वभाव जो बना था, हृष्टपुष्ट हुआ था, फूला था, फला था, सुदृढ़ हुआ था। ऊर्जा का आवेग बढ़ने से, बहने से, मन का जो स्वभाव मजबूत हुआ था। उसी ऊर्जा के स्रोत के मंद पड़ने से उन्हीं भावनाओं का विसर्जन उसी शरीर में हो रहा था। यह दृश्य मेरे जैसे इस अवसर को चूक गये व्यक्ति के लिये अत्यंत सुखद था। उसके मन के धर्म का बदलना। सुखद था उसके मन का शरीर के वास्तविक धर्म में दीक्षित होना। बदलाव को तहेदिल से स्वीकार करना। सुखद था जीवन की सभी ऋतुओं को देखना उसी शरीर में रहते हुये, बरसात के साथ जीवन की तपन को झेलना।

मैं देख रहा था कि मेरी माँ का अस्थिपंजर में लिपटा बेजान शरीर अंतर्मुखी हो रहा है। धीरे-धीरे वह उन सबको भूलती जा रही थी, जो अनावश्यक थे।

उसका मन मोह-माया से इतना ऊपर उठ चुका था कि धार्मिक आस्थाओं ने भी उसे संबल देना बंद कर दिया था। शायद इसलिये उसने अपनी दैनिक पूजा-पाठ से अवकाश ले लिया था। यह एक अच्छा संकेत था विषयों से आसक्ति का छूटना, मन के स्वभाव का विसर्जन के मार्ग पर लगना।

धीरे-धीरे बुढ़ापे की बढ़ती पीड़ादायक कमजोरी ने उसे मौत के मुहाने पर लाकर बिठा दिया था। तीव्र गति से बढ़ती शरीर की कमजोरी ने उसे अशक्त कर दिया था। उसने खाना-पीना छोड़कर खटिया पकड़ ली थी। फिर भी अंतिम क्षणों में बढ़नेवाला एक-एक पल उसका स्वयं के प्रति सजगता से भरा था। चेतना, होशो-हवाश से सराबोर था, जो उसे मुक्ति की ओर ले जा रहा था। उसकी इस संसार के प्रति एक संपूर्ण-मृत्यु को सुनिश्चित कर रहा था।

धीरे-धीरे उसके शरीर की इन्द्रियों के बंधन ढीले पड़ने लगे थे। बाहर से तो वह मूर्छित अवस्था में चली गयी थी, किंतु भीतर से वह पूरी तरह से सजग थी। अचानक उसकी काया

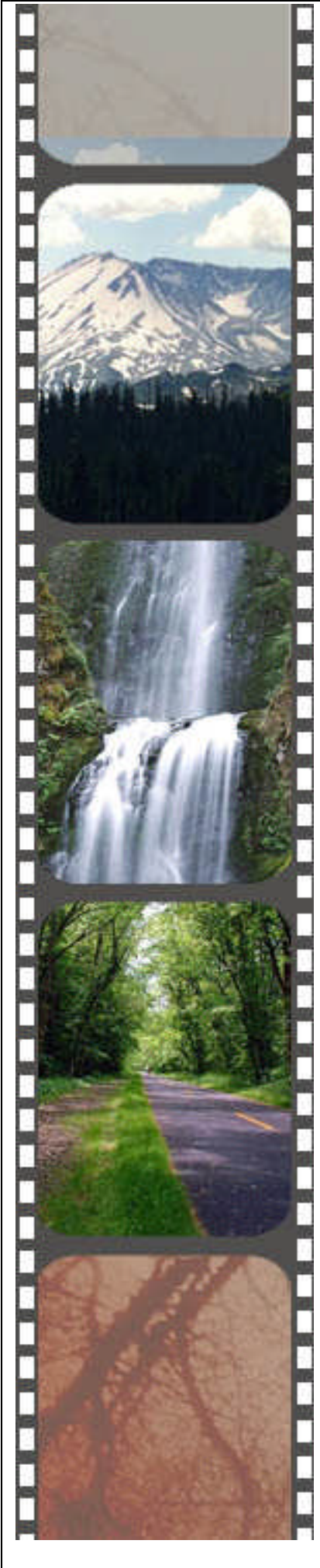
से एक नये सोच की तरंगें उठने लगी थीं। अचानक उसका स्मृतिपटल सक्रिय हो गया था। जहाँ बारी-बारी से, अत्यंत तेज गति से सारे जीवन के पाप-पुण्य तुलने लगे थे। मृत्यु के निकट उसे सारे जीवन का स्मरण हो आया था। किंतु आज अकेले ही उसे उन सबका सामना करना था। सद्कर्म उसके मित्र बननेवाले थे और बुरे कर्म उसके शत्रु। बस उसे यहाँ से चले जाने के लिये अपने अंतिम परीक्षाफल का ही इंतजार था। शायद सब कुछ छूटकर यही उसके साथ जाने वाला था। अगला जन्म, एक नयी अच्छी शुरूआत का कारण बननेवाला था। पर उसके मन की धारा बहते ही जा रही थी, अंतर्मन की गहराई में छुपी, दबी-कुचली इच्छाओं को उकेर रही थी। जीने की चाहत न होते हुये भी वह इसे जीवन से जोड़कर रखे हुये थी।

एक-एक धनात्मक सुख के संस्कार से, एक-एक ऋणात्मक दुःख के संस्कार को घटाकर शून्य हो जाना, उनकी तमाम जानकारियों से रिक्त हो जाना। जो जहाँ से जिस धरती से बादल बनकर लिया, उसे वहीं बरसाकर चले जाना। काया का धर्म है बंधन, पर आत्मा का धर्म है उससे मुक्ति। ज्ञान से, पदार्थ के गुणधर्मों से, उसकी भौतिकी से, उसकी रासायनिकता से मुक्त हो जाना, उससे पूरी तरह रिक्त हो जाना। शून्यता लेकर आये थे, शून्यता लेकर चले जाना। एक संपूर्ण-मृत्यु के लिये इतनी अर्हता पर्याप्त थी। यही हुआ मेरी माँ के साथ, पर थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ । उसकी साँस रुकी ही थी कि उसके निर्बल शरीर ने एक जबरदस्त झटका खाया। मैं देख रहा था कि उसकी काया से एक रूपहली आभा फूट पड़ी थी। वह एक घूमते हुए बवंडर का रूप लेने लगी थी। धीरे-धीरे उसमें एक नयी-नवेली श्रृंगारमयी दुल्हन का रूप प्रकट होने लगा था। कुछ क्षणों के लिये मेरी आँखें चकाचौंध हो कर रह गयी थीं, उस रूप पर ठहर-सी गयी थीं। यह एक अजीब चमत्कार था, जिसे मैंने पहली बार अपनी आँखों से देखा था। मैं बड़े आश्चर्य में पड़ गया था। पर थोड़ी ही देर में वह रूप एक हलके विस्फोट के साथ छिन्न-भिन्न हो गया था। उसी निर्जीव काया में समा गया था। मुझे आशा बँधी कि दुबारा उसकी साँस चलने लगेगी, दिल धड़कने लगेगा और वह अपनी आँखें खोल देगी।

पर ऐसा नहीं हुआ। उसे कुछ और ही मंजूर था। वह परम स्थिरता में विश्राम कर गयी थी। वह हमेशा-हमेशा के लिये मुझसे दूर चली गयी थी। वह एक संपूर्ण-मृत्यु को उपलब्ध हुई थी, क्योंकि मेरी दुनिया में उसका कोई भी रूप प्रकट होकर स्थायी नहीं हुआ था। वह मेरी, तुम्हारी दुनिया छोड़कर अपने मूल में लौट गयी होगी या किसी जीव के रूप में किसी कोख में आकार ले रही होगी।

अतृप्त अस्तित्व शायद ही कभी जन्म-मृत्यु चक्र से बाहर निकल पाते होंगे। बिरले ही इससे मुक्त होते होंगे। मनुष्य के लिये वही लोग पूजनीय हो सकते हैं। उनकी इस अनंत की यात्रा में एक सच्चे मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। मेरी माँ उस मंजिल को हासिल नहीं कर पायी होगी। पर वह एक संपूर्ण-मृत्यु को जरूर उपलब्ध हुई थी। वह सद्गति को प्राप्त हुई थी। शेष भी शुभ होगा इसी मंगल-कामना के साथ मैं उस सर्वशक्तिमान प्रकृतिरूपी ईश्वर के आगे नतमस्तक हुआ था जो इस समस्त संसार का चालक है, दयालु है, उदार है और अंतिम निर्णय के समय एक न्यायाधीश भी है। हाथ जोड़कर मैं उसकी प्रशंसा के गीत गाने लगा था। उसे धन्यवाद देने लगा था। इस तरह से मैं एक लगाव से मुक्त हुआ था, हल्का हुआ था।

सचमुच जीवन कितना परिवर्तनशील है! सब कुछ बदल जाता है। कहीं भी कोई चीज स्थायी नहीं रहती। मेरे निकट के सभी बारी-बारी से बिछड़ गये थे। मेरे सारे इष्ट-मित्र, करीबी रिश्तेदारों की एक पीढ़ी गुजर गयी थी। इस संक्रमण काल में सभी अल्पायुधारी सिद्ध हुये थे। सभी के लिये समय से पहले ही समय खत्म हो गया था। परंतु मेरे लिये समय की घड़ी रुक-सी गयी थी। इसकी वजह मेरी इस योनि की विशेष काया है, जिसका क्षय समय के धरातल पर अत्यंत धीमा है, न के बराबर है। निरपेक्ष गतियों में पड़ने की यही सजा है। कहीं सापेक्षगतियों से तुम चूक न जाओ। निरपेक्ष गतियों के भंवर में न गिर जाओ, अजन्मे न रह जाओ, किसी तरह आत्मघात करने से बच जाओ, ऐसी मंगल कामना रखते हुए मैं अपनी कहानी तुम्हारे हाथों लिखा रहा हूँ। यह पुण्य लाभ कमाने का अवसर दो मुझे, प्रिय वत्स ।



प्रिय वत्स! आत्मघात किसी भी समस्या का हल नहीं है। वह मात्र क्षणिक हो सकता है, पर स्थायी नहीं। मरकर भी जिस संसार से बचना असंभव हो, उसे गँवाने से क्या लाभ? बेहतर होगा उसका सामना करना। आत्महत्या करने से कोई आदमी दुःखों से बाहर निकला नहीं। आत्महत्या करते वक्त चित्त की क्या अवस्था होगी? कितना दुःख से भरा होगा जीवन, जब कोई आत्महत्या करेगा? तो जिस तरह का अंतिम चित्त होगा इस जीवन का, अगले जीवन का प्रथम चित्त भी उतने ही दुःखों से भरा होगा। अर्थात् दुःखों से छुटकारा नहीं हुआ। आत्महत्या करने से दुःखों से छुटकारा नहीं होता। समस्या का सिर्फ विरोध करने या उससे भागने से उसका निरोध नहीं होता है, बल्कि यह स्वयं से भागने जैसा है। स्वयं से भागकर तुम दुःख और विनाश का ही निर्माण करोगे। समझदारी इसी में है कि तुम समस्या का सामना करो, लाभ-हानि की चिंता किये बगैर। समस्या का हल सिर्फ उससे सामना करने में है।

तुम जिस होड़ या प्रतियोगिता से बचना चाहते हो। उसका स्थायी हल चाहते हो, वह आत्महत्या में नहीं है। गलती से तुमने उसे अपने जीवन का एक स्थायी हिस्सा मान लिया। जब कभी मौका पड़े किसी एक चीज को चुनने का, तो स्वयं को चुनो। प्रतियोगिता या होड़ को ठोकर मार दो। खेत-खलिहान, वन में शरण लो। एक प्रतियोगिताविहीन जीवन में पदार्पण करो। सुख-सुविधा, संपन्नता के बगैर भी एक बहुत बड़ा जीवन अपनी खुशहाली से प्रकृति की गोद में जी रहा है, हँस रहा है,

खेल रहा है, कल-कल करते हुये बह रहा है। तुम अपने आपको उस महाप्रकृति का एक हिस्सा समझो।

देखो, यह संसार जीवन जीने के लिये कितनी अच्छी जगह है! बहुत ही सुंदर, अनुपम सौंदर्य से भरी जगह है। इसका उपयोग तुम उससे भागने के लिये मत करो, और न बहुत ही ज्यादा व्यस्त रहकर स्वयं को भुलाने में करो। इसका उपयोग सिर्फ तुम अपने बारे में एक स्पष्ट समझ बनाने में करो। इससे तुम्हें परिस्थितियों में सामंजस्य बैठाने में बहुत मदद मिलेगी। कभी तुमने रुककर, थोड़ी फुर्सत निकालकर इस प्रकृति को पारखी नजरों से देखा है? देखो, यह धरती कितनी हरी-भरी है। सौंदर्य और स्वाभाविकता का कितना अद्भुत संगम है यहाँ। यह तुम्हारे लिये उतनी ही सुंदर होती जायेगी जितना तुम उसके प्रति सजग होते जाओगे। रंग, हरियाली और पीलेपन की विविधता। जब कोई व्यक्ति इस प्रकृति के साथ एकाकी होता है, तो उसे जो पता लगता है, वह आश्चर्यजनक है। पर तुम किसी भी चीज के साथ एकाकी नहीं होते, न अपने साथ और न ही इस प्रकृति के साथ। सौंदर्य बोध का अभाव ही अंततः तुम्हें स्वार्थी बनाता है। दुःख और पीड़ा की ओर ले जाता है।

कभी पीछे मुड़कर देखा है तुमने स्वयं को, पागलों की तरह अपनी तुलना करते रहते हो दूसरों के साथ वह भी बिना रुके। ऐसे लोगों के साथ जो तुम्हारे से ज्यादा सफल हैं। इस तुलना की आदत ने ही तुम्हारे वास्तविक व्यक्तित्व को मार डाला है। तुम्हें यंत्रवत, कृत्रिम बना दिया है। तुलना वस्तुतः अपमानजनक है। वह तुम्हारी दृष्टि को विकृत कर देती है। तुम्हें तुम्हारी ही नजरों में गिराकर तुममें हीन भावना पैदा कर देती है। तुम्हारी सारी शिक्षा इसी पर आधारित है। अतः व्यक्ति जो है, उससे अलग हटकर कुछ और बनने के लिये अनवरत संघर्ष करता रहता है। यही चीजें जीवन में प्रतिस्पर्धा, निष्ठुरता और महत्वाकांक्षा लाती हैं। हमें लगता है कि ये चीजें जीवन में प्रगति लाती हैं। पर यह प्रगति अब तक हमें जितने भयावह युद्ध और दुःखों की ओर ले गयी, वैसा इस संसार में पहले कभी नहीं हुआ था। बगैर किसी तुलना व महत्वाकांक्षा के शिक्षा ग्रहण करना ही सच्ची शिक्षा है। सफलता और असफलता, दोनों से मुक्त होना ही जीवन का यथार्थ है। यह तभी संभव है जब तुम

फल की चिंता किये बगैर कर्म करने को उत्सुक रहोगे। शुरू से किसी परिणाम की खोज नहीं करना। वही चीज करना, जिसे करने मात्र से प्रेम हो। प्रेम का कोई पुरस्कार या दंड नहीं होता। यदि प्रेम है, तो उसे करना बहुत सरल है।

प्रिय आनंद,

तुम मानसिक रूप से नमनीय बनो। शक्ति मजबूत और सुदृढ़ होने में नहीं है, बल्कि लचीला होने में है। आँधी-तूफान में सिर्फ लचीले पेड़ ही खड़े रह पाते हैं। तुम एक लचीले-फुर्तीले मन की शक्ति प्राप्त करो। अपने सभी विचारों और भावों के प्रति सतर्क बनो। अपने विचारों को देखना, उनके प्रति सजग होना व्यक्ति को नमनीय बनाता है। उनकी निंदा या मूल्यांकन मत करो बल्कि अत्यंत सतर्क बनो। मनुष्य जीवन सचमुच में बहुत अद्भुत है। बहुत सी चीजें अप्रत्याशित रूप से घटित होती हैं। समस्या का सिर्फ विरोध करने से उसका हल नहीं होगा। तुम्हारे पास असीम नमनीयता और एक निष्कपट हृदय होना चाहिये। जीवन एक तलवार की धार है, जिस पर तुम्हें एक सावधानी और नमनीय बुद्धिमता के साथ चलना है।

वत्स, उन्मुक्त बनो! यदि अतीत में जीना ही पड़े तो जियो, लेकिन अतीत के साथ संघर्ष मत करो। जब अतीत उभरकर सामने आये तो उसमें पैठकर देखो। न उसे अपने से दूर हटाने की कोशिश करो और न उसे जोर से पकड़ने की कोशिश करो। इन सारे वर्षों का दुःख और खुशियाँ, घृणित प्रहार, संबंध विच्छेदन की तुम्हारी यादें और दूर से इन सबका बोध, तटस्थ भाव तुम्हारे हृदय को और अधिक समृद्ध और सुंदर बनायेगा। तुम्हारी परिपक्वता को बढ़ायेगा।

पहले से ही अपने इरादों और मंशाओं के बारे में स्पष्ट समझ रखना सीखो। तुम देखोगे कि चीजें बड़ी आसानी से हल होने लगती हैं। आवश्यकता केवल इस बात की रह जाती है कि मनुष्य अपनी मानसिकता को वर्तमान के हर क्षण में स्थिर रखे। उसे भूत और भविष्य में विस्तार न दे।

प्रिय आनंद, तुम याद रखो कि बाहरी सुंदरता कभी स्थायी नहीं होती। यदि आंतरिक आनंद और उत्साह न हो तो वह जल्दी ही नष्ट हो जाती है। हम हमेशा बाहर की दुनिया को ही विकसित करते रहते हैं। चमड़ी के नीचे जो हमारा आंतरिक अस्तित्व है, उसकी ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। असल में हमारा वही मूल आधार है, जो बड़ी आसानी से बाह्य को पराजित कर देता है। उसे समृद्ध और मजबूती प्रदान करो। ध्यान-समाधि का अभ्यास इस क्षेत्र में तुम्हारा एक अच्छा मददगार साबित हो सकता है। तुम्हारे आंतरिक आधार को सुदृढ़ बना सकता है। उसे अपने जीवन में दैनिक जरूरतों की तरह शामिल करो।

वत्स, मैं बार-बार जिस मन का जिक्र कर रहा हूँ, वह एक अद्भुत चीज है। वह जितना जटिल है, मूलतः उतना ही सरल है। अनेक मनोवैज्ञानिक दबाव उसे जटिल बना देते हैं और यही बात अंतर्द्वन्द्व और दुःख का कारण बन जाती है। विरोध और संग्रहवृत्ति उत्पन्न करती है। उसके प्रति सजग होना और उनमें उलझे बिना उसे गुजर जाने देना जरूरी है, तभी एक शांत और सजग मन उपलब्ध हो सकता है। एक शांत और सजग मन वरदान है। वह पृथ्वी के समान असीम संभावनाओं से भरा है। जब तुम्हारे पास एक ऐसा मन होगा, जो तुलना न करे, निंदा न, तो तुम्हारी अनंत समृद्धि संभव हो जाएगी। वत्स, परिश्रमी बनो, आलस्य से दूर रहो। आलस्य भी एक प्रकार की हिंसा है जो स्वयं के द्वारा स्वयं पर की जाती है। यह एक जीवित व्यक्ति की उसके जीते जी मृत्यु है।

परिश्रम तुम्हें हमेशा एक सच्चे स्वास्थ्य के निकट रखेगा। तुम्हारे मन और मस्तिष्क को युवा बनाये रखेगा।

आवश्यकताओं को अपनी सीमा के भीतर रखना सीखो। उन्हें अपने नियंत्रण से बाहर मत जाने दो कि वे तुम पर हावी हो जाएं। आवश्यकतायें जितनी कम होंगी उतने ही तुम स्वतंत्र होओगे, दुःखों से दूर होओगे। इस संसार में वही व्यक्ति सुखी रह सकता है जो सीमित जरूरतों से संतुष्ट रहना सीख गया है और स्पर्धा से दूर है।

प्रिय आनंद कभी ऐसा मत होने देना कि शूद्रता का धुआं तुम्हारा दम घोंट दे और इस आग को बुझा दे। तुम्हें चलते रहना है, चीरते हुये, ध्वस्त करते हुए, जड़ जमाते हुए नहीं।

किसी भी समस्या को जड़ मत पकड़ने दो, उससे तुरंत निपट लो और हर सुबह जागो... ताजा, युवा और निष्पाप।

अपने स्वास्थ्य के प्रति समझदार और सुनिश्चित बनो। भावना और भावुकता को अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ मत करने दो। जीवन में ऐसे बहुत सारे प्रभाव व दबाव हैं जो मन को निरंतर आकार देते रहते हैं, उनके प्रति सजग रहो। उनके गुलाम मत बनो। गुलाम होने का अर्थ है असामान्य होना। भय का सामना करो। उसे आमंत्रित करो। उसे अचानक अप्रत्याशित रूप से आक्रमण मत करने दो, बल्कि सतत उसका सामना करो। परिश्रम और प्रयोजन के साथ उसका पीछा करो। समस्याओं को जड़ मत पकड़ने दो, तत्काल उससे गुजर जाओ। उन्हें कोई चिन्ह मत छोड़ने दो। जैसे ही वे उठें उनसे निपट लो।

समुचित रूप से खाओ, व्यायाम करो और जिम्मेदार बनो। भावनाओं को अपने स्वास्थ्य और शरीर से खिलवाड़ मत करने दो।

चाहे जो कुछ भी घटित हो, महत्वपूर्ण है शरीर को मन के स्वरूप का निर्माण मत करने दो। शरीर के प्रति सजग रहो। अच्छी तरह से खाओ। दिन में कुछ समय के लिये एकांत में रहकर ध्यान-साधना का अभ्यास करो। पीछे की ओर मत फिसलो। परिस्थितियों का गुलाम मत बनो। प्रचंड होओ। जागरूक बनो।

वत्स, तुम्हारे भीतर एक सुस्पष्ट परिवर्तन हुआ है। एक गहरी आन्तरिक जीवंतता, शक्ति और स्पष्टता का जन्म हुआ है। उसे सहेजकर रखो। उसे कार्य करने दो। उसे गहरे और व्यापक रूप में प्रवाहित होने के लिये अवसर प्रदान करो।

प्रिय आनंद बेटा तुम दीर्घायु बनो!

इस मंगल कामना के साथ तुम्हारा अभागा

आत्मघाती चाचा प्रेमचंद आत्माराम

इतना लिखते ही उसके हाथ से कलम छूट गयी। वह एक कड़ी जकड़न व एक बड़े सम्मोहन से मुक्त हुआ, लेकिन दूसरे ही क्षण वह गहरी नींद में चला गया। उसी टेबल पर सिर रखकर सो गया था। उसके ठीक ऊपर एक फाँसी का फंदा अपनी मस्ती में हवा के झोकों के साथ





झूल रहा था। अफसोस कि इस बार उसकी भूख मिटाने के लिये एक जीवन उपलब्ध नहीं हुआ था। उसी गिरफ्त से एक जीवन ठीक उसी तरह से बच निकलने में सफल हुआ, जिस तरह से किसी तूफान में कोई बड़ी किशती बचकर निकल जाती है। वह एक नयी सुबह देखने जा रहा था - एक काली घनी अमावस्या की रात के बाद। वह रात बड़ी भयानक थी, जो एक निराश जीवन को निगलने के लिये आयी थी। तूफान के साथ काले घने बादलों को भी अपने साथ ले आयी थी। शुक्र है! उसे इस बार एक प्रकाश-घर की रोशनी नसीब हुई थी, जो अब सुबह के उजाले में अप्रासंगिक होने जा रही थी। पर इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता-उस हर एक जीवन के लिये जिसे दुबारा गढ़ना असंभव होता है। जीवन जीना अनिवार्य होता है क्योंकि वह अत्यंत दुर्लभ होता है, बड़े भाग्य से मिलता है इसलिये वह अत्यंत मूल्यवान होता है। उसे बचाना, उसकी हर हाल में रक्षा करना ही मनुष्य का धर्म होना चाहिये, क्योंकि वह किसी अज्ञात महान शक्ति का ऋण होता है। उसे पूरी तरह से जीकर, संवर्धित करके ही उस ऋण से उऋण हुआ जा सकता है। मनुष्य जीवन की सार्थकता उससे उऋण होने में ही है।

Book Name: Jiyo Jindagi Josh se

Writer: G Prakash

Nagpur,

Maharashtra, India

Other Books

Email Id: [Info@suicidesaver.com](mailto:Info@suicidesaver.com)

Web Address: [www.suicidesaver.com](http://www.suicidesaver.com)

For free distribution only. Commercial use of content is  
punishable offence

All rights reserved for [suicidesaver.com](http://suicidesaver.com)